विद्याभूषण पं० के० भुजबली शास्त्री
सम्पादक 'गुरुदेव' मूडबिद्री

कर्णाटक के जैन शासक

दक्षिण भारत से जैनधर्म का सम्बन्ध सुप्राचीन काल से है. भागवत के कथानुसार भगवन् ऋषभदेव का बिहार कर्णाटक के कोंक, वेंक, कुटकादि प्रदेशों में भी हुआ था. कोंक से वर्तमान कोंकण और कुटक से कोडगु का सम्बन्ध है. इस बात को में अन्यत्र[1] सप्रमाण सिद्ध कर चुका हूँ. उधर बौद्धों के प्रामाणिक ग्रंथ महावंशादि से भी दक्षिण में जैनधर्म का अस्तित्व सुदीर्घ काल से सिद्ध होता है. द्वारिका के नाश को पहले ही जानकर, भगवान् नेमिनाथ के पल्लव देश में जाने का उल्लेख, जैनागमों में स्पष्ट अंकित है. यों तो ई० पूर्व चौथी शताब्दी सम्बन्धी श्रुतकेवली भद्रबाहु की दक्षिणयात्रा की घटना को प्रायः सभी इतिहासज्ञ स्वीकार करते हैं. खैर, अब प्रस्तुत विषय पर आएं.

तमिलु प्रान्त में, पांड्यों की राजधानी मधुरा जैनों का केन्द्र रहा. पांड्य नरेश जैन धर्मानुयायी थे. खारबेल के शिलालेख से विदित होता है कि उनके राज्यभिषेक के शुभावसर पर तत्कालीन पांड्य नरेश ने धान्यों से भरे हुए कतिपय जहाजों को भेंट रूप से उन्हें भेजा था. इस पांड्य वंश की एक शाखा दक्षिण कन्नड जिलान्तर्गत बारकूर में भी राज्य करती रही. तमिलु ग्रंथ नालडियार से ज्ञात होता है कि श्रुतकेवली भद्रबाहु के साथ उत्तर से दक्षिण में जो एक विशाल मुनिसंघ आया था, उस संघ के हजारों विद्वान् मुनि धर्मप्रचारार्थ इसी तमिलु प्रान्त में आकर रह गये थे. आचाय पूज्यपाद के शिष्य वज्रनन्दी ने लगभग पांचवी शती में मधुरा में एक विशाल जैनसंघ को स्थापित किया था. कतिपय विद्वानों की राय से सुप्रसिद्ध कुरल ग्रंथ के रचयिता, जैनों के प्रातः स्मरणीय आचार्य कुंदकुंद ही है. सर वाल्टर इलियट के मत से दक्षिण में कला-कौशल एवं साहित्य पर जैनों का काफी प्रभाव पड़ा है. कालवेन ने भी लिखा है कि—जैनों की उन्नति का युग ही तमिलु साहित्य का महायुग है. एक जमाने में सारे दक्षिण भारत में जैनधर्म का गहरा प्रभाव था. श्री शेषगिरिराव के अभिप्राय से वर्तमान विशाखपट्टण, कृष्ण, नेल्लूर आदि प्रदेशों में जैनधर्म विशेष रूप से फैला था. फिर भी कर्णाटक के इतिहास में जैनधर्म का जो महत्त्वपूर्ण स्थान सुरक्षित है, वह अन्यत्र कहीं नहीं है.

कर्णाटक में ई० पू० से ही जैनधर्म मौजूद था. मान्य अन्वेषक विद्वानों की राय से श्रुतकेवली भद्रबाहु के साथ ही कर्णाटक में जैनधर्म का आगमन हुआ. किन्तु कतिपय विद्वानो की यह भी राय है कि भद्रबाहु की यात्रा के पूर्व भी दक्षिण में जैनधर्म अवश्य रहा होगा. अन्यथा श्रुतकेवलीजी को इतने बड़े संघ को इस सुदूर दक्षिण में लिवा लाने का साहस कभी नहीं होता. अपने अनुयायी भक्तों से भरोसे पर ही उन्होंने इस गुरुतर काम को किया होगा. शिलालेखों से पता चलता है कि मौर्य और आंध्र वंश के पश्चात् कर्णाटक में राज्य करने वाले कदंब और पल्लव वंश के शासक भी जैन धर्मावलंबी थे. खासकर बनवासि के प्राचीन कदंब और पल्लवों के बाद तोलव (वर्तमान दक्षिण कन्नड ज़िला) में राज्य करने वाले चालुक्य निःसन्देह जैन धर्मानुयायी थे. चालुक्यों ने अनेक देवालयों को दान दिया है.

---

१. देखो इससे सबम्धित लेखक का निबन्ध.

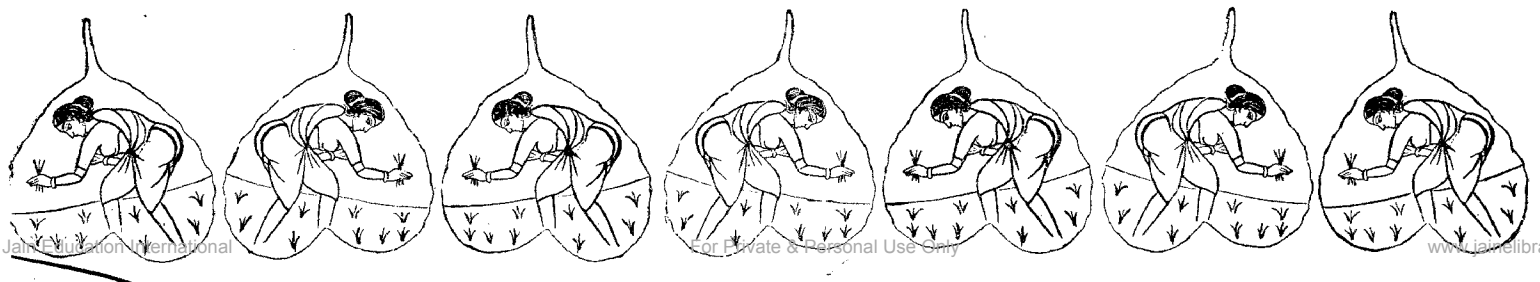

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गंग शासक जैन धर्मावलंबी थे. इस वंश के आदिम ऐतिहासिक पुरुष माधव और दडिग दोनों जैनाचार्य सिंहनंदी के शिष्य थे. सिंहनंदी के ही द्वारा गंगवाडि राज्य स्थापित हुआ था. इस वंश के शासकों ने ई० सन् २५० से ९७५ तक राज्य किया था. ई० सन् ४७५ में राज्य करने वाले इस वंश के शासक अविनीत के गुरु, जैन पण्डित विजयकीर्ति थे. यह अविनीत विद्वान् था. दुर्विनीत इसी का पुत्र था. यह दुर्विनीत प्रसिद्ध जैनाचार्य पूज्यवाद का शिष्य रहा. इस वंश के शासकों ने पल्लव, चोल और चालुक्यों को जीत कर कर्णाटक का दीर्घ काल तक वैभव पूर्वक शासन किया. दुर्विनीत के पुत्र मुष्कर के नाम से धारवाड़ जिलांतर्गत लक्ष्मेश्वर में एक सुन्दर जिनमंदिर निर्माण कराया गया था. इसी वंश के प्रतापी राजा मारसिंह ने चेर, चोल और पाण्ड्य राजाओं को पूर्णतः हराया था. यह जैनधर्म का पक्का अनुयायी था. मारसिंह वैभवपूर्वक राज्य शासन कर अंत में राज्य को त्याग कर, जैनाचार्य गुरु अजितसेन के पादमूल में जिनदीक्षा लेकर, धारवाड़ जिलांतर्गत बंकापुर में, ई० सन् ९७५ में, समाधि मरण पूर्वक स्वर्गवासी हुआ था.

श्रवण बेल्गोल में विश्वविख्यात बाहुबली की मूर्ति को स्थापित करने वाला वीरमार्तण्ड चावुंडराय इसी मारसिंह का मंत्री एवं सेनानायक था. इसे त्रिभुवनवीर, सत्ययुधिष्ठिर, वीरमार्तण्ड आदि अनेक उपाधियाँ प्राप्त थीं. चावंडराय सिद्धांतचक्रवर्ती नेमिचन्द्रजी का शिष्य था. इसके द्वारा गंगराज्य और जैनधर्म दोनों की आशातीत उन्नति हुई थी. चावुंडराय संस्कृत, कन्नड आदि भाषाओं का बड़ा पण्डित था. खैर, गंगो का अस्तित्व कर्णाटक में सोलवीं शताब्दी तक मौजूद था. इस वंश के अवसान के बाद कर्णाटक में होय्सल शासकों ने जैनधर्म को आश्रय दिया.

होय्सल वंश के मूल पुरुष सल ने जैन-मुनि सुदत्त की सहायता से ही इस वंश को स्थापित किया था. बाद में इस वंश के शासक विनयादित्य ने जैनाचार्य शांतिदेव के आशीर्वाद से गंगवडि का महामण्डलेश्वर हुआ. इसने अपने शासनकाल में अनेक जिनमंदिर और सरोवरों को निर्माण कराया था. विनयादित्य का पुत्र युवराज एरेयंग बड़ा वीर था. इसने अपने श्रद्धेय गुरु आचार्य गोपनंदी को, श्रमणबेल्गोलस्थ चंद्रगिरि के जिनालयों के जीर्णोद्धार के लिये कतिपय ग्रामों को दान में दे दिया था. ये सब बातें श्रवणबेल्गोल के शिला लेखों में स्पष्ट अंकित हैं. विनयादित्य के उपरांत बल्लाल शासक नियुक्त हुआ. यह बल्लाल जब एक भयंकर रोग से पीड़ित हुआ, तब श्रवणबेल्गोल के तत्कालीन मठाधीश चारुकीर्तिजी ने ही उसे उस रोग से मुक्त किया था. इसके उपलक्ष्य में बल्लाल ने चारुकीर्तिजी को 'बल्लालजीवरक्षक' उपाधि से अलंकृत किया था.

बल्लाल के मामा दण्डनायक मरियण्ण ने सुखचंद्राचार्य के नेतृत्व में बेलेगेरे में एक सुन्दर जिनमन्दिर निर्माणकारा कर वैभव-पूर्वक उसकी प्रतिष्ठा की थी. कहा जाता है कि बल्लाल का उत्तराधिकारी बिट्टिदेव रामानुजाचार्य के उपदेश से वैष्णव धर्मानुयायी हो गया था. परन्तु अंत तक उसे जैनधर्म पर बड़ी श्रद्धा रही. इसके लिये एक-दो नहीं, अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं. बिट्टिवर्धन की पटरानी शांतला आचार्य श्रीप्रभाचन्द्र कीप क्की शिष्या रही. इसने श्रवणबेल्गोल में 'सवतिगंधवारणबसदि' नामक एक सुन्दर शिलामय जिनालय निर्माण कराकर, उसमें अपने नामानुकूल भगवान् श्री शांतिनाथ की मूर्ति स्थापित की थी. अंत में शांतला ने सल्लेखना-द्वारा अपना शरीर त्याग किया था. होय्सल राज्य में एक-दो नहीं, प्रभावशाली अनेक जैन श्रावक उन्नताधिकार में प्रतिष्ठित थे. गंगराज बिट्टिदेव का प्रधानमन्त्री एवं सेना-नायक रहा. यह गंगराज श्रीशुभचन्द्र का शिष्य था. इसने गोविन्दवाडि ग्राम को श्रीगौम्मटेश्वर की सेवा के लिये सादर एवं सहर्ष समर्पित किया था. गंगराज ने चालुक्य नरेश त्रिभुवनमल्ल की प्रबल सेना को वीरता से जीतने के उपलक्ष्य में बिट्टिदेव द्वारा बहुमान में प्राप्त परम ग्राम को मातापोचिकब्बे और पत्नी लक्ष्मी के द्वारा निर्मापित जिन-मन्दिर को समर्पित किया था.

गंगराज का बड़ा भाई बम्भ भी होय्सल राज्य का सेनापति था. गंगराज ने अपनी पूज्य माता की स्मृति में, श्रवण-बेल्गोल में' कत्तलेबसदि' के नाम से एक सुन्दर जिनालय निर्माण कराया था. इसकी पत्नी लक्ष्मी के द्वारा भी श्रवणबेल्गोल में 'एरडुकट्टेबसदि' के नाम से एक मनोज्ञ जिनमन्दिर निर्माण हुआ था. इस गंगराज के पुत्र बोप्पण के द्वारा भी श्रवण-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बेल्गोल में एक जिनमन्दिर बनवाया गया था. यह बोप्पण महाराजा बिट्टिदेव का चतुर सेनापति था. बोप्पण की पत्नी सेनानायक मरियण्ण एवं भरत की (व्योटी) छोटी बहन थी. मरियण्ण और भरत ये दोनों प्रथम नरसिंह (ई० सन् ११४१-११७३) के सेनानायक रहे इन सहोदरों ने सैकडों मन्दिर बनवाये और श्रवणबेल्गोल में चन्द्रगिरि पर भरत-बाहुबली की मूर्तियाँ भी स्थापित कीं. गंडविमुक्त सिद्धान्तदेव इन सहोदरों के श्रद्धेय गुरु थे. इस होय्सल सेना में पुरुष ही नहीं, अपने पूज्य पति सेनापति पुनीष के साथ जैन वीरांगना जक्कियब्बा भी सेनानायिका रही. ये दोनों पति-पत्नी श्रीअजितसेनाचार्य के शिष्य थे. उपर्युक्त ये सभी बातें श्रवणबेल्गोल के शिलालेखों में मौजूद हैं.

जैनधर्म का परम श्रद्धालु हुल्ल होय्सल शासक बिट्टिदेव, नरसिंह और वीरबल्लाल इन तीनों के शासन काल में कोशाधिकारी था. हुल्ल को शासन-कार्य एवं राज्यघटना के निर्माण में योगंधराय और राजनीति में बृहस्पति से भी प्रवीण बतलाया है. यह महामण्डलाचार्य देवकीर्ति का शिष्य था. इसने श्रवणबेल्गोल में शिलामय 'चतुर्विंशतितीर्थंकरबसदि' के नाम से एक सुन्दर जिन मन्दिर बनवाया था. राजा नरसिंह जब यात्रार्थ श्रमणबेल्गोल गया, तब इस मन्दिर की पूजा के लिये इसने सवणेरु नामक ग्राम को दान में दे दिया था. हुल्ल की प्रार्थना से इस दान का समर्थन बल्लाल द्वितीय ने भी किया था. इस प्रकार गंगराज, हुल्ल और बोप्पण आदि श्रद्धालु जैन श्रावकों ने होय्सल शासकों से जैन धर्म की बड़ी-बड़ी सेवाएँ कराई हैं. इन लोगों ने स्वयं भी जैनधर्म की अपार सेवा बजाकर, जैन इतिहास में अपना नाम अमर कर दिया है.

अब राष्ट्रकूट राजवंश को लीजिए. इस वंश के शासनकाल में भी कर्णाटक में जैनधर्म विशेष उन्नति पर था. राष्ट्रकूट-वंशी अमोघवर्ष प्रथम (ई० सन् ८१५-७७) जैनधर्मानुयायी था. इसकी राजधानी मलखेड या मान्यखेट थी. इसके राज्य में कर्णाटक ही नहीं, महाराष्ट्र का बहुभाग भी शामिल था. अमोघवर्ष के गुरु आदि पुराण के रचयिता भगवज्जिनसेन थे. इसे नृप तुंग और अतिशयधवल उपाधियाँ थीं. अमोघवर्ष ने वैभवपूर्वक राज्य शासन कर अंत में जिनदीक्षा ली थी. अमोघवर्ष के शासनकाल में जैन वाङ्मय विशेष रूप से प्रवर्धमान हुआ. धवला, जयधवला, शाकटायनव्याकरण की अमोघवृत्ति और गणितसार आदि बहुमूल्य कृतियाँ इसी के शासनकाल में रची गईं. राष्ट्रकूट शासकों में प्रायः सभी शासक जैनधर्म के अनुयायी थे. कृष्ण द्वितीय के गुरु आचार्य गुणभद्र थे. इसी के शासनकाल में जैन वीरांगना जक्किमब्बे नागरखंड में दक्षता से राज्य करती रही. राष्ट्रकूट के अंतिम शासक इन्द्र ने अन्त में श्रवणबेल्गोल जाकर ई० सन् ९८४ में समाधिमरण स्वीकार किया था. राष्ट्रकूट शासकों के सामंत, जैन वीर बंकेय, इसका सुयोग्य पुत्रलोकादित्य, नागार्जुन आदि कर्णाटकीय राजनीति की उन्नति एवं संस्कृति के उत्थान में पूर्ण सहयोगी रहें.

चालुक्यवंश जैन धर्मानुयायी नहीं था. फिर भी इस वंश के शासक जैनधर्म से विशेष प्रभावित थे. इस वंश के पुलकेशि द्वितीय के गुरु जैनाचार्य रविकीर्ति थे. इसी प्रकार विनियादित्य के धर्मगुरु जैन विद्वान् निर्विव्यदेव रहे विक्रमादित्य का विवाह तो जैन राजवंश से ही हुआ था. इसकी रानी तथा इंगलिगि प्रांत की शासिका जाकलदेवी के द्वारा वहाँ पर दो सुन्दर जिनमन्दिर निर्माण कराये गये थे. चालुक्य शासकों ने जैन कवियों को भी सहर्ष आश्रय दिया था. कन्नड आदिपुराण का कर्त्ता यशस्वी महाकवि पंप चालुक्य राज-सभा का भूषण था. बट्टिग के द्वारा निर्मापित एक जिनालय के लिये अरिकेसरी ने सोमदेवसूरी को एक गांव दान में दिया था. रामस्वामी अय्यंगार के मत से कलचूरि राजवंश पक्का जैनधर्मानुयायी था. इस बात को उन्होंने अपनी कृति में पुष्ट प्रमाणों से सिद्ध किया है.

विजयनगर साम्राज्य के काल में भी जैन वीरों का साहस कुंठित नहीं हुआ था. सेनानायक बैचण्ण, वीर, शांत, दंडनायक चमूप आदि जैन ही थे. इन्हीं वीरों की मदद से हरिहर को सिंहासन मिला. बुक्कराय के शासनकाल में भी दण्डनायक, मुण्डप मल्लप्प और बैचप्प का पुत्र इरुगप्प आदि सम्मान पूर्वक अधिकारारूढ़ रहे. इरुगप्प हरिहर द्वितीय का भी मंत्री था. प्रथम देवराय की पत्नी भीमादेवी जैनधर्मावलंबिनी थी. इसने 'श्रवणबेल्गोलस्थ मंगायिबसदि' में भगवान् पार्श्वनाथ की मूर्तिस्थापित की थी. देवराय ने भी विजयनगर में पार्श्वनाथबसदि को निर्माण कराया था. विजयनगर के इन शासकों ने जैनधर्म से प्रवाहित हो, अनेक जिनालयों को दान भी दिया है. इस वंश के प्रतापी सम्राट् बुक्कराय प्रथम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के ई० सन् १३६५ का एक लेख बहुत ही महत्त्वपूर्ण है. यह लेख श्रवणबेल्गोलस्थ 'भंडारिबसदि' में आज भी मौजूद है. इस लेख में लिखा है कि जैनधर्मावलंबियों के द्वारा बुक्कराय से वैष्णवों की ओर से होने वाले अत्याचार की शिकायत की जाने पर बुक्कराय ने जैन और वैष्णव दोनों सम्प्रदायों के प्रभावशाली व्यक्तियों को एकत्रित कर जैन भक्तों का हाथ वैष्णवों के हाथ में रख कर, दोनों में मेल कराया. साथ ही घोषणा की कि जैन और वैष्णव दोनों मत अभिन्न हैं. दोनों एक ही शरीर के अंग हैं.

इसी प्रकार चेंगाल्व, कोंगाल्व, शांतर आदि दक्षिण के कई जैन सामंत शासक भी काफी प्रसिद्ध रहे. खासकर तोलव [दक्षिण कन्नड] के बेररस, बंग, अजिल, मूल, चौट, सेवंत, बिण्णाणि, कोन्न आदि कई सामंत शासक, पक्के जैन-धर्मावलंबी हो वैभवपूर्वक यहाँ पर शासन करते रहे. इन सामंतों में से बैररस के द्वारा कारकलस्थ गोम्मट-मूर्ति और निम्मण्ण अजिल के द्वारा वेणूरस्थ गोम्मट-मूर्ति समारोहपूर्वक स्थापित की गई थी. इस प्रकार एक जमाने में कर्णाटक में जैन-धर्म लिये के जैन शासकों का बड़ा बल रहा. वह जमाना जैनधर्म के लिये सुवर्ण-युग ही था.

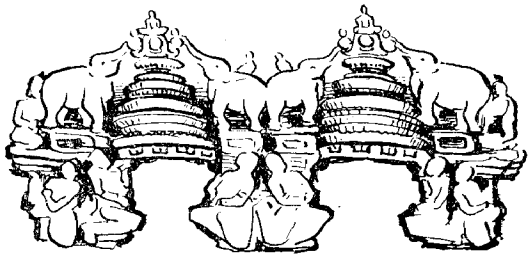

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org